समयसार, गाथा ३८ है। उसका श्लोक

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।३८।।

नीचे हरिगीत

मैं एक , शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!॥३८॥

टीका : जो,.... यह आत्मा **अनादि मोहरूप अज्ञान से...** अनादि काल का आत्मा है, वह अनादि से राग-द्वेष आदि विकार परिणाम, उसके मोह में - उसकी एकताबुद्धि में अज्ञान था। अनादि से अपने स्वरूप चिदानन्द प्रभु को भूलकर, आहाहा! **मोहरूप अज्ञान से.. मोहोन्मत्त...** मूल तो मोह का अर्थ अज्ञान किया, मोह का। आहाहा! अपना स्वरूप क्या है, उसको भूलकर अनादि से यह शुभ-अशुभराग, यह शरीर मेरा है - ऐसा

मूढ़ मिथ्यादृष्टि अनादि से परिभ्रमण ऐसे भाव से करता है। आहाहा! **अज्ञान से उन्मत्तता के कारण....** पागल हुआ है पागल। आहाहा!

अपना भगवान, चीज, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा तो सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य है। उसे न जानकर अनादि से रागादि परचीज में मोह से गहल-पागल होकर... आहाहा! **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था....** अत्यन्त अज्ञानी था, अप्रतिबुद्ध था। वस्तु का कुछ भान नहीं था। आहाहा! चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते-करते अपनी चीज को भूलकर पागल हो गया। आहा! शरीर यह जड़ मिट्टी धूल है, इसे अपनी चीज है — ऐसा माना। अन्दर जो शुभ-अशुभराग आता है — हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, वह राग है, दुःख है और अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव आता है, वह शुभराग है, दुःख है, आकुलता है, परन्तु उस चीज को अपनी मानकर... आहाहा! जो अपने में है नहीं और परवस्तु है, उसको अपनी मानकर... सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! अप्रतिबुद्ध **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था...** कोई कहते हैं कि यह समयसार तो मुनि को समझाना है, तो यहाँ तो कहते हैं — अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, उसको यह समयसार समझाते हैं। अत्यन्त अज्ञानी है, उसको समझाते हैं। आहाहा!

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, अनाकुल आनन्द का नाथ आत्मा अन्दर पड़ा है। उसको भूलकर शरीर या राग आदि के प्रेम में पागल हो गया है, मूढ़ हो गया है, कहते हैं। आहाहा! अप्रतिबुद्ध है, कुछ भान नहीं, कुछ ज्ञान नहीं, अज्ञान में पागल हो गया। आहाहा! लक्ष्मी, जड़ मिट्टी, धूल तो कहे मेरी है। स्त्री का शरीर और आत्मा पर, तो कहता है कि मेरी है। पैसा, इज्जत पर — तो कहता है मेरी है। अन्दर में पाप का परिणाम होता है, वह विकार और दुःख है, तो कहता है मेरा है। पुण्य का परिणाम जो दया, दान, व्रत आदि का विकल्प उठता है, वह राग है, दुःख है, तो अज्ञानी उसको अपना मानता है। आहाहा! ऐसा **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था,** अत्यन्त मूढ़ था। आहाहा!

अनादि काल से अपना स्वरूप भूलकर, अपने परमेश्वर, अपना परमेश्वर चिदानन्द प्रभु आत्मा, अपना परमेश्वर, उसको भूलकर पर में ईश्वरता, बड़प्पन की महिमा की। राग - पुण्य का भाव और उसका फल, उसकी महिमा आ गयी, वह अप्रतिबुद्ध अज्ञानी मूढ़

है। उसको **विरक्त गुरु से....** अब क्या कहते हैं ? उसको सन्त, गुरु जो उसको समझाया। कैसा गुरु ? विरक्त गुरु। जिसे राग और पर में से रक्तपना उड़ गया है और अपने आनन्दकन्द में जिसकी रक्तता उत्पन्न हुई है। आहाहा!

गुरु कैसा होता है ? जिसको शुभ-अशुभराग में लीनता-रक्तता छूट गयी है, विरक्त हो गयी हैं। आहाहा! और अपना आनन्दस्वरूप प्रभु, अनाकुल शान्ति और आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा में जिसकी रक्तता / लीनता है। राग से-पर से विरक्तता है, अपने स्वभाव में रक्तता है। आहाहा! ऐसे गुरु निर्ग्रन्थ मुनि, सन्त, आहाहा! उन्होंने उसे समझाया - अज्ञानी को समझाया, भाई! प्रभु! तू क्या है ? आहा! अरे! तू क्या करता है, अनादि से, है ?

विरक्त गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर.... उसके गुरु ने कहा - प्रभु! तुम राग से, शरीर से भिन्न है प्रभु! तेरी चीज में तो अतीन्द्रिय आनन्द भरा है नाथ! तू सुख का सागर है और यह रागादि दुःख का बीज-सब संसार का बीज है। आहा! उससे तेरी चीज भिन्न है न प्रभु! ऐसा विरक्त गुरु से निरन्तर समझाया का अर्थ ? निर्ग्रन्थ गुरु सन्त आत्मज्ञानी अनुभवी - जिनको अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन वर्तता है, वे कहीं निरन्तर समझाने को निवृत्ति-फुर्सत उनको नहीं है परन्तु गुरु ने जो उसे कहा - प्रभु! भगवन्त आत्मा! आहाहा! तेरी चीज जो राग में मूर्त हो गयी है, वह चीज तू नहीं है। आहाहा! तुझमें तो आनन्द और शान्ति पड़ी है, प्रभु! उसकी दृष्टि कर न! यह क्या किया तूने ? पुण्य और पाप के फल में मोहित हुआ पागल हो गया है प्रभु तू! आहाहा! अतः एक बार कहा परन्तु वह समझनेवाला, उसने निरन्तर विचार किया तो निरन्तर समझाये जाने पर - ऐसा कहने में आया। समझ में आया ? उन्होंने एक बार कहा, किसी समय विशेष भी-बारम्बार भी आते हैं परन्तु वे बारम्बार समझावे, कहने पर इसने बारम्बार अन्दर में निरन्तर उसको विचार में लिया। ओहो! मैं तो सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा (हूँ)। यह राग आदि विकल्प और शरीरादि तो पर हैं, मुझमें नहीं; मुझमें है, उसको मैंने मेरा माना नहीं, मुझमें नहीं है, उसको मुझमें माना — ऐसी विचारधारा श्रोता ने बारम्बार विचारधारा अन्दर में चलायी। आहाहा! फुर्सत कहाँ परन्तु यह, आहाहा!

निरन्तर समझाये जाने पर.... उसका अर्थ यह है। एक बार भी हमने कान में डाला, डाल दिया प्रभु! तू ज्ञायकस्वभाव है न, नाथ! तू शुद्ध है, ध्रुव है, पवित्रता का पिण्ड है; यह राग आदि और शरीरादि तेरी चीज नहीं है। आहाहा! ऐसे समझाये जाने पर बारम्बार उसका विचार करने पर... आहाहा! रटन लगायी, ओहो! मैं आनन्दस्वरूप; राग नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं — ऐसे अन्दर में लगन लगायी। आहाहा! किसने? श्रोता ने। अज्ञानी था, उसे गुरु ने समझाया तो वह समझाने पर उन्होंने जो कहा था, उसका बारम्बार घोलन किया। ओहो! मैं तो ज्ञायकभाव हूँ, जानन... जानन... जानन... जानन... ज्ञातादृष्टा स्वभावस्वरूप मैं हूँ; जो राग आदि विकल्प है, वह मैं नहीं हूँ, वह दु:खरूप दशा है; मैं तो आनन्दरूप हूँ। आहाहा! शरीर आदि मिट्टी, यह जड़ धूल है, वह मैं नहीं; मैं तो शरीररहित अशरीरी चैतन्यस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसा बारम्बार गुरु ने समझाया का अर्थ — बारम्बार उसने विचार का घोलन किया। आहाहा!

किसी प्रकार से समझकर,.... स्वयं बोध से या उपदेश से समझकर। आहाहा! किसी प्रकार से लिया न? आहाहा! अन्तर आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरौ' इस आत्मा का स्वरूप अन्दर सिद्धसमान है — ऐसा बारम्बार विचार के घोलन में लिया।

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥

आहाहा! '**ज्ञान कला उपजी मौकूं**' यह राग और विकल्प जो शुभ-अशुभराग है, वह मैं नहीं। आहाहा! ऐसी अपनी ज्ञान की कला जगी, '**ज्ञान कला उपजी अब मौकूं कहूँ गुण नाटक आगम केरौ, तासु प्रसाद सधे शिवमारग वेगी मिटे घटवास बसेरो**' हड्डियों के, चमड़ी के, मांस के पिण्ड में रहना, यह शीघ्र मिट जायेगा। यदि इस प्रकार मैंने भेदज्ञान में रमण किया तो घट में रहना छूट जायेगा। मैं सिद्ध हो जाऊँगा। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात है, भाई! आहाहा! **किसी प्रकार से समझकर, सावधान होकर,....** सावधान! सावधान! सावधान! मैं - मेरी चीज अन्दर आत्मतत्त्व सिद्धसमान स्वरूप में सावधान हुआ। जो ऐसे (पर में) सावधान था-राग और राग के फल, पर आदि शरीर आदि में सुन्दर आदि देखकर आकर्षित होता था। अरेरे! धूल में यह

तो मिट्टी है भाई! मांस और हड्डियाँ हैं। यह आकर्षित... आत्मा के आनन्द में आकर्षित हो गया। सावधान हुआ न? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मज्ञान होता है तो कैसे होता है? — यह बात कहते हैं और आत्मधर्म - सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र का परिणमन उसे किस प्रकार होता है, यह बात चलती है। आहाहा! तो गुरु ने उससे कहा कि तेरी चीज तो अन्दर आनन्दकन्द प्रभु, तू सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु तू है। आहाहा! यह पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध के विकल्प उठते हैं, प्रभु! वह तू नहीं, वह तो दुःख है, आकुलता है। आहा! शरीर आदि, कर्म आदि तो भिन्न अजीवतत्त्व है, वह तो तेरी पर्याय में भी नहीं, तेरी पर्याय में जो पुण्य और पाप का शुभाशुभ विकल्प / राग उठता है, वह भी तू नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज है और उस चीज के बिना यह व्रत, तप, भक्ति आदि करे, वह सब निरर्थक है। संसार के खाते - भटकना है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुम एक बार सुन, सावधान हो जा! कहते हैं। देखो! आया न? समझकर सावधान हो गया। अरे! मैं चीज क्या हूँ? अरे! यह राग और पुण्य-पाप की विकल्प की वृत्तियाँ हैं, वे तो दुःखरूप-पर हैं, मेरी चीज नहीं। मैं तो ज्ञाता, ज्ञायकस्वभाव, शुद्धस्वभाव, ध्रुवस्वभाव परमपारिणामिकस्वभाव, सहज स्वभावभाव, वह मैं हूँ — ऐसे सावधान हो गया। अरे! ऐसी बात है। अप्रतिबुद्ध था, वह सावधान हो गया — ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था....** आहाहा! चैतन्य की चीज क्या है? उसको कुछ जरा पता नहीं और विकार तथा पुण्य-पाप के फल में एकाकार... आहाहा! पर में सुखबुद्धि, शरीर में सुखबुद्धि, पुण्य-पाप के भाव में सुखबुद्धि, पैसा, इज्जत, कीर्ति, स्त्री, परिवार में सुखबुद्धि... मूढ़ है। सुख तो भगवान आत्मा में अन्दर है, उसका तो पता नहीं और पर में सुख की मूढ़ता - ऐसा अप्रतिबुद्ध था। उसको गुरु ने समझाया। आहाहा! समझाने पर निरन्तर मनन में ले लिया - सावधान हुआ। आहाहा! अरे! मैं कौन हूँ? - यह कहते हैं। देखो! **जैसे कोई (पुरुष) मुट्ठी में रखे हुए....** मुट्ठी, वह दातून-वातून करते हैं न, तो सोने का दाँत हो या ऐसा कोई निकालकर रख दिया, (दाँत)। भूल गया। मुट्ठी में सोना था, वह भूल गया।

कहाँ... कहाँ है ? वह अंगूठी निकालकर रखते हैं न। **जैसे कोई (पुरुष) मुट्ठी में रखे हुए सोने को भूल गया हो....** सोने को भूल गया। सोना - सोना मुट्ठी में था, आहाहा! आहाहा! **और फिर स्मरण करके....** फिर याद आया कि अरे! यह रहा सोना। था तो सही मुट्ठी में, परन्तु भूल गया। कहाँ रखा ? यह तो दाँतून करते हुए सोने की अँगूठी हो जरा ताक हो या जरा लकड़ी के दरवाजे पर रखा हो, जरा भूल गया। कहाँ रखा ? फिर याद आवे। ओहोहो! यहाँ रखी। आहाहा! ऐसे **फिर स्मरण करके उस सोने को देखे....** सोने को। **इस न्याय से,....** यह न्याय - यह दृष्टान्त भगवान ने दिया। आहाहा! ऐसी बातें भाई! बहुत कठिन। आहाहा! अन्तर वस्तु भगवान ज्ञायकभाव से भरी पड़ी प्रभु है। आहाहा! उसमें राग और द्वेष के विकल्प की गन्ध नहीं है। आहाहा! अरे! पर्याय में अपूर्णता है, वह भी उसमें नहीं है। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा भगवानस्वरूप प्रभु मैं हूँ; मैं यह नहीं — ऐसे गुरु से समझाये जाने पर अपने विचार की धारा में समझ गया। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है। भाई! आहाहा!

यह शरीर... कहा था न एक बार ? एक बाई / लड़की, अठारह वर्ष की लड़की थी, उसके पति को दूसरी थी, उसका पति पहला विवाह किया तो वह गुजर गयी, विवाह हुआ और इसे यहाँ शीतला निकली। शीतला क्या कहते हैं ? (श्रोता : चेचक) इतने दाने निकले कि दाने-दाने में कीड़े, यह जीव-जीव क्या कहते हैं ? (श्रोता : कीड़े) कीड़े। सुन्दर शरीर था गोरा, हमने उसे देखा था, फिर कीड़े पड़ गये। बिस्तर पर सुलावे, करवट ऐसे बदले तो हजारों कीड़े गिरें, गद्दे में सुलावें, करवट ऐसे बदले तो हजारों कीड़े इस ओर गिरें, ऐसे फिर तो इस ओर... वह कहे, बा, माता! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं मेरी तो अभी उम्र अठारह वर्ष की है, दो वर्ष का विवाह है, यह कहाँ से आया ? यह क्या हुआ ? आहाहा! वह दाने.. दाने... दाने होते हैं न ? छिद्र और उसमें यह कीड़े। आहाहा! काटते हैं। बा! मैंने ऐसे पाप किये नहीं यह तो.... आहाहा! रोवे, उस बिस्तर पर ठीक नहीं लगे कहीं सोवे, ऐसे सोवे या ऐसे सोवे, ठीक नहीं लगे। क्योंकि उसमें सब कीड़े सड़ गये। ऐसे यह शरीर, यह मिट्टी का शरीर - 'सलिये पडमं विध्वसणं' यह जैसा मिट्टी का पिण्ड। आहाहा! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि मैं शरीर हूँ - ऐसा माना था। आहाहा! प्रभु! शरीर तो

मिट्टी, धूल, पुद्गल की चीज है और यह तो जड़ है। आहाहा! अरे! अन्दर में तेरे पुण्य-पाप का भाव होता है न, प्रभु! वह तो विभाव है, दुःख है। वस्तु है तो विभाव से मुक्त है। आहाहा! ऐसा गुरु ने सुनाया। आहाहा! कठिन काम भाई! धर्म कोई ऐसी चीज है कि साधारण यह दया पाली और व्रत किया और यात्रा की, भक्ति की और धर्म हो गया... हराम धर्म हो तो वहाँ, वह सब तो राग की क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

अपना चैतन्यप्रभु आनन्द का दल, आहाहा! इस तरफ सावधान होकर अपने परमेश्वर... जैसे अपनी मुट्ठी में सोना था, भूल गया; वैसे **अपने परमेश्वर आत्मा....** आहाहा! अनन्त अनन्त ईश्वर शक्ति में भरा पड़ा प्रभु, भगवान! तुझमें तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त शक्ति, वह अनन्त शक्ति... गुण कहो या शक्ति कहो, उसमें प्रत्येक में ईश्वरता भरी है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण का धारक परमेश्वर तू है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? कभी अभ्यास नहीं, निवृत्ति नहीं, फुर्सत नहीं! आहाहा! तुझमें तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता - ऐसे अनन्त गुणों में प्रत्येक गुण में प्रभुता भरी है। ऐसे अनन्त-अनन्त ईश्वरता के धनी तुम परमेश्वर है न नाथ! आहाहा! उसकी तू रक्षा कर न! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक है।

लोगों ने अनन्त काल में किया तो नहीं परन्तु यथार्थरूप से सुना भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो जन्म-मरणरहित होने की चीज की बात है। जन्म-मरण करेगा एकाध भव तो उस भव में से दूसरा भव नरक और निगोद का होगा। आहाहा! यहाँ तो आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त, संवत् ४९ में हुए, भगवान के पास गये थे, सीमन्धर भगवान विराजते हैं, पाँच सौ धनुष का देह, करोडपूर्व की आयु है, विराजते हैं, वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष पहले संवत ४९ में वहाँ आठ दिन रहे थे, सदेह गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त संवत ४९ - २००० वर्ष हुए। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! इस शास्त्र में भगवान ने ऐसा कहा - अरे! तुम 'अहं एको' यह द्विधा, द्विधा — राग और शरीर की द्विधा तुझमें कहाँ से आ गयी? आहाहा! पहला शब्द है न 'अहं एको' इसका आ गया। अर्थ आ जायेगा। आहाहा! यह तो धीरज की बातें हैं, बापू! धर्म कोई ऐसी चीज नहीं है कि पैसा देने से हो जाये, मन्दिर बनाने से

हो जाये, गजरथ बनावे और यात्रा कर दे और सम्मेदशिखर की तथा गिरनार की यात्रा हो जाये; इसलिए धर्म हो जाये यह धर्म ऐसी चीज है ही नहीं। उसमें राग हो तो पुण्य हो जाये, पुण्य, वह संसार है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **सावधान होकर, जैसे.... अपने परमेश्वर आत्मा को भूल गया था....** जैसे वह सोना मुट्ठी में था, उसे भूल गया था। याद आया कि अरे! यह रहा! ऐसे परमेश्वर अन्दर था, उसको भूल गया था। मैं कहाँ हूँ? कहाँ हूँ? मैं कहाँ हूँ? मैं राग में हूँ, पुण्य में हूँ, शरीर में हूँ, लक्ष्मी में हूँ? आहाहा! मैं बाप का बेटा हूँ? आहाहा! मैं लड़के का बाप हूँ? अरे! कहाँ गया प्रभु? समझ में आया? अपना परमेश्वर भिन्न है, उसको भूल गया था। यह सब यादगीरी हो गयी — यह मेरी स्त्री है और यह मेरा पुत्र है, और यह मेरा पैसा है, और यह मेरा मकान है, महल-मकान है। पाँच-पच्चीस लाख का... अरे प्रभु! वह तो परचीज है न नाथ! है?

श्रोता : बम्बई में सत्तर लाख के मकान में आप उतरे थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उतरे थे न! अपने एक दिगम्बर है, आमोद, आमोद गुजरात में है न? हमारे पालेज में रहते थे न? हम तो भरूच और बडोदरा के बीच में पालेज, वहाँ दुकान है न, वहाँ हम नौ वर्ष रहे, दुकान चलायी थी, पाँच साल, छोटी उम्र की बात है। सत्रह से बाईस — पाँच वर्ष। यहाँ तो ८९ वर्ष हुए। बड़ी दुकान चलती है तो वहाँ आगे नजदीक में आमोद है तो हम आमोद के पास से निकले थे तो हमारे भागीदार कुँवरजी भाई थे न, दर्शन करने आये थे। अन्त में वहीं थे, फिर गुजर गये। तो उस आमोद के अपने गृहस्थ हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये... दिगम्बर गुजराती (हैं) तो वहाँ उतरे थे न, बम्बई, समुद्र के किनारे... सत्तर लाख का तो एक मकान है। सत्तर लाख का एक मकान, बहुत नरम व्यक्ति है। क्या नाम उनका? (श्रोता : रमणीकभाई!) रमणीकभाई, उनकी माँ वृद्ध है, दोनों को बहुत प्रेम बेचारों को बहुत (प्रेम) परन्तु एक मकान सत्तर लाख का ऐसे तो बहुत मकान, दिगम्बर जैन हैं गुजराती (हैं) वे हमारे पालेज-भरूच और बड़ोदरा के बीच समीप में आमोद है, तो वहाँ हम उतरे थे। कौन सा वर्ष था? ८७ वाँ, ८७ वर्ष और शरीर की उम्र ८७ वर्ष थी जन्म-जयन्ती थी तो उनके मकान में उतरे थे। मैंने तो उसको कहा

भईया! यह क्या है यह? इस समुद्र में क्या बगुले उड़ते हैं? बगुला समझते हो, बगुला कहते हैं न? अरे! वह तो मछली मारते हैं तो यह बगुला कहाँ तक जाते हैं, भईया! मुझसे कहा महाराज! बीस-बीस मील तक बगुले ऐसे ऊपर चले जाते हैं परन्तु मछलियों को-आहार को लेकर, वृक्ष नहीं, पान नहीं, आहाहा! अरेरे! यह बगुला इस मछली को खाकर, मरकर नरक में जायेगा। मरकर नरक में जाना - ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये, भाई! तुमने आत्मा का भान किये बिना (अनन्त भव किये) आहाहा! उन गुरु ने समझाया। आहाहा! तो सत्तर लाख का मकान वह धूल का मकान था। आहाहा! यह छब्बीस लाख का है। यह रहा न, देखो न! यह भगवान का मन्दिर। महावीर भगवान (का मन्दिर)। यह छब्बीस लाख का है। अकेला संगमरमर पत्थर, संगमरमर परन्तु वह तो जड़ है। आहाहा! आत्मा का मकान जो अन्दर है, वह तो चैतन्यस्वरूप-परमेश्वरस्वरूप है। आहाहा! आहाहा!

अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता... प्रभु! तेरा तुझे पता नहीं। भाई! तेरी ईश्वरता, परमेश्वरता का तुझे पता नहीं। आहा! वह यहाँ सावधान होकर जाना। **अपने परमेश्वर को भूल गया था....** आहाहा! **उसे जानकर,....** जैसे मुट्ठी में सोना था और भूल गया था न, याद आ गया। अरे! यह रहा! वैसे भगवान आत्मा तो यहीं था। आत्मा परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा!

यह आ गया न, उस ३२० गाथा में। नहीं, ३२० गाथा? संस्कृत टीका जयसेनाचार्य दिगम्बर सन्त... अन्दर भगवान आत्मा वस्तु जो द्रव्य है - पदार्थ (है) वह सकल निरावरण, सकल सम्पूर्ण निरावरण भगवान आत्मतत्त्व है। जिसको जीवतत्त्व-आत्मतत्त्व कहते हैं। द्रव्य-द्रव्य अर्थात् वस्तु तो सकल निरावरण है, उसमें आवरण कुछ है नहीं और वह तो अखण्ड एक है। आहाहा! पर्याय का भेद भी नहीं है, वह तो अखण्ड एक है। आहाहा! प्रत्यक्ष प्रतिभासमय मेरी ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष भास होता है - ऐसा मैं हूँ। आहाहा! राग से नहीं परन्तु मति-श्रुतज्ञान की निर्मल प्रत्यक्ष पर्याय से प्रत्यक्ष होनेवाला मैं हूँ। अविनश्वर हूँ, कभी मेरा नाश हुआ नहीं। मैं तो ऐसा का ऐसा ध्रुव सदा टिक रहा हूँ। आहाहा! अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण सहज स्वभावभाव परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ। निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ। यह परमेश्वर

कहा न... आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को ऐसा मानता है। आहाहा। मैं तो निज परमात्मा हूँ। अपना परमात्मस्वरूप भगवान अन्दर... आहाहा! देह-देवल में विराजमान आत्मा भिन्न है, वह मैं हूँ। मैं शरीर नहीं, मैं राग नहीं, मैं पुण्य नहीं, मैं पाप नहीं, पुण्य का फल पैसा आदि मैं नहीं। आहाहा! ऐसा जब आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, तब धर्म की दशा उसको हुई। उसमें ऐसा भान हुआ। **समझकर सावधान होकर....** भूल गया था उसको जानकर, जाना (कि) अरे! यह तो ज्ञायकस्वरूप जाननस्वभाव का पिण्ड प्रभु! अकेला ज्ञाता-दृष्टा ज्ञानस्वभाव का सागर, ऐसा यह मैं - ऐसा धर्मी जीव-सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा समझकर / जानकर, है ? **उसका श्रद्धान कर....** जानकर-श्रद्धान कर। वह चीज ज्ञान की वर्तमान पर्याय / दशा में यह जाना कि यह वस्तु अखण्ड ज्ञायकस्वरूप चैतन्य है — ऐसा जाना तो प्रतीति हुई, श्रद्धा हुई। जाने बिना उस चीज की प्रतीति क्या ? जो चीज़ पर्याय में जानने में नहीं आयी, उस चीज की प्रतीति करना, (यह बात) कहाँ से आती है ? आहाहा!

मैं तो भगवान.... आठ वर्ष की बालिका हो परन्तु यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है तो ऐसे प्राप्त करती है। आहाहा! सीताजी, देखो! आहाहा! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी थी। भले ही रावण (हरण करके) वहाँ ले गया परन्तु अन्दर में तो मैं आनन्दकन्द हूँ, मेरी दृष्टि मुझे कोई उठा सके या ले सके (ऐसा) है नहीं। आहाहा! जरा थोड़ा अस्थिरता का राग था। चारित्र नहीं था और सम्यग्दर्शन-ज्ञान था। आहाहा! तो राम ने जहाँ हनुमान को भेजा... हनुमान आये, हनुमान थे न ? अगूँठी लेकर, अगूँठी! अरे वीरा! आहाहा! राग आया न अस्थिरता का ? सम्यग्दर्शन है; जानते हैं कि यह विकल्प मेरी चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! 'वीरा मोरा वधामनी कहाँ से लाया ? यह वधामनी कहाँ से लाया वीरा.... प्रभु, यह अगूँठी मेरे नाथ की; मेरे प्रभु रामचन्द्र मेरे एक पति; दूसरा कोई पति है नहीं। अरे! अगूँठी मेरे नाथ की, यह वीरा कहाँ से लाया ? वीरा रे वीर वधामनी' आहाहा! राग है, अन्दर भान है, हों! यह राग मेरी चीज नहीं है, पति मेरी चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसी चीज है, भाई!

यह वनचर कहते थे न, वे लोग ऐसा कहते हैं न ? वे तो उन्हें वनचर कहते हैं। वे

वनचर नहीं थे। हनुमान तो कामदेव-राजकुमार थे। लोग उन्हें पूँछ बतलाते हैं, वह मिथ्या बात है। हनुमान तो एक राजकुमार कामदेव पुरुष, छह खण्ड में उनके जैसा सुन्दर रूप नहीं - ऐसे थे। तो अन्य (उन्हें) पूँछ लगाकर 'वनचर वीरा रे वधामनी' उसमें ऐसा आता है। वन में चरनेवाला - बन्दर... यह वधामनी कहाँ से आयी। वे तो राजकुमार थे, कामदेव पुरुष थे। आहाहा! आहाहा!

सीताजी (को) अन्दर में आत्मा का भान है - सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, मैं तो आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ, मुझको कोई ले जाये या मुझे देखकर कोई राग में आ जाये, वह मैं नहीं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं कि **सावधान होकर, जानकर,....** अपना प्रभु 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसै घट में प्रगट सदा' अपनी रिद्धि-सिद्धि भगवान आत्मा में पड़ी है। 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसै घट में प्रगट सदा, अन्तर की लक्ष्मी से अयाची लक्षपति है, अन्तर में अन्तर की लक्ष्मी से अयाची लक्षपति है।' अन्तर आनन्द की लक्ष्मी के भानवाला धर्मी अयाची लक्षपति है। कोई याचते नहीं है। लक्ष्मी अन्दर है अन्दर। आहाहा! बाहर की लक्ष्मी की इच्छा धर्मी को होती नहीं। अस्थिरता होती है परन्तु वह दृष्टि में नहीं होती है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव-धर्म की पहली सीढ़ीवाला-धर्म के पहले सोपानवाला.... पगथिया कहते हैं न? (हमें) हिन्दी बहुत नहीं आती, मेरी भाषा तो गुजराती है न! यह थोड़ी-थोड़ी हिन्दी... यह तो भोपालवाले आये हैं न? समझ में आया? आहाहा!

भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से ओपित, शोभित... जैसे स्वर्ण को गेरु लगाने से स्वर्ण ओपित और शोभित - चमक... चमक... चमक... होती है, वैसे भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द की चमक होती है। आहाहा! समझ में आया? वह चैतन्य चमत्कार भगवान त्रिलोकनाथ सम्यग्दृष्टि में जान लिया। आहाहा! भले गृहस्थाश्रम में हो परन्तु जाना कि मैं तो परमेश्वरस्वरूप चिदानन्द परमात्मस्वरूप हूँ। आहाहा! मुझमें विकार तो नहीं मेरा शरीर तो नहीं परन्तु मुझमें अल्पज्ञता और अपूर्णता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! इन दिगम्बर सन्तों की यह वाणी है। ऐसी अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! यह वस्तु भगवान त्रिलोकनाथ ने कही, वह सन्त कहते हैं। सन्त आढ़तिया होकर माल देते हैं कि मेरे भगवान यह कहते हैं। आहाहा!

उसे जानकर, उसका श्रद्धान कर.... जाना कि भगवान ज्ञायक... ज्ञायक... जाननेवाला परिपूर्ण — प्रभु ऐसा जानकर, श्रद्धान किया। जानकर श्रद्धान किया। जाना कि यह आत्मा ऐसा पूर्ण - पूरा है — ऐसा जान करके श्रद्धान / समकित किया। समझ में आया? आहाहा!

और उसका आचरण करके.... तीनों बोल लेना है न! स्वरूप अन्तर आनन्दस्वरूप का ज्ञायकस्वरूप का भान हुआ, ज्ञान हुआ और ज्ञान होकर श्रद्धा हुई और श्रद्धान होकर उसका आचरण करके। वह स्वरूप जो आत्मा आनन्दकन्द का ज्ञान हुआ, श्रद्धा हुई - समकित, फिर उसमें आचरण, आनन्दकन्द प्रभु में रमना, आनन्द के नाथ में रमना, आचरण करना, आहाहा! वह चारित्र। चारित्र कोई देह की क्रिया और पंच महाव्रत का परिणाम, वह कहीं चारित्र नहीं है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ की श्रद्धा और ज्ञान करके, उस अन्तर में-आनन्द में रमना। आहाहा! अरे.. अरे! व्याख्या एक-एक में अन्तर - समकित में अन्तर, ज्ञान में अन्तर और चारित्र में अन्तर, यह तो व्रत-तप करे और हो गया चारित्र.... वह धूल भी नहीं है। समझ में आया? आहा!

उसका आचरण करके.... उसका आचरण करके है न? अर्थात् उसमें तन्मय होकर। जैसे अज्ञान में यह दया, दान के विकल्प में तन्मय था, वैसे यह वस्तु जानी और श्रद्धा हुई तो उसमें तन्मय होकर आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होकर... यह चारित्र / यह आचरण, यह आत्मा का आचरण... आहाहा! शुभाशुभभाव, वह आत्मा का आचरण नहीं। आहा! वह तो विकार का आचरण है।

भगवान आत्मा अपना ज्ञायकस्वरूप, ज्ञायक - ऐसा जानकर उसमें प्रतीति की, श्रद्धा-समकित किया और फिर ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द में आचरण किया। ओहोहो! स्वरूप आनन्द में रमण किया, उसका नाम आत्मा का आचरण, उसका नाम आत्मा का चारित्र। आहाहा! **आचरण करके जो सम्यक् प्रकार से....** सच्चे प्रकार से **एक आत्माराम हुआ,....** सम्यक् प्रकार से अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप होकर सम्यक् प्रकार से... अकेले धारणा में जान लिया कि आत्मा ऐसा है और ऐसा है - ऐसा नहीं। आहाहा!

सहजानन्दी प्रभु को जानकर, प्रतीति करके, उसमें आचरण करके... उसमें आचरण

किया। आहा! ऐसे सम्यक् प्रकार से सत्य दृष्टि से, सत्य ज्ञान से, सत्य आचरण से **एक आत्माराम हुआ,....** आत्माराम। 'निज पद रमै सो राम कहियै' आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप में रमे, वह आत्माराम है; राग में रमे, वह हराम है। आहाहा! वह आत्मा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अभी इसे सच्चा ज्ञान ही नहीं होता, उसे जाना कहाँ भाई? आहाहा! कहते हैं **सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ,...** देखा? एक आत्माराम हुआ। उन राग और पुण्यरूप था, वह अनेकपने, वह नहीं; छूट गया। आहाहा!

ज्ञायक ध्रुव शुद्ध का ज्ञान करके, उसकी प्रतीति करके, उसमें रमणता की - ऐसे तीनों लिये न! ३८ गाथा है न, यह अन्तिम गाथा है। यह आत्मा की तीनों दशा प्रगट हुई। आहाहा। **उसका आचरण करके (- उसमें तन्मय होकर) जो सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ, वह मैं ऐसा अनुभव करता हूँ....** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा कहता है कि धर्मी धर्म का परिणमन करनेवाला ऐसा जानता, कहता है-जानता है। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि... मैं ऐसा अनुभव करता हूँ। आहाहा! जैसे चैतन्यस्वभाव समुद्र उछलता है, जैसे समुद्र में बाढ़ आती है; वैसे भगवान आत्मा चिदानन्द की प्रतीति और ज्ञान हुआ, स्थिर हुआ... पर्याय में शान्ति की बाढ़ आयी, आनन्द की-स्वच्छता की (बाढ़ आयी)। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? मुश्किल है बापू! वीतराग का मार्ग! यह दिगम्बर धर्म, यह जैनधर्म कोई अलौकिक वस्तु है। यह वह नग्न हो और वस्त्र छोड़कर हो गये दिगम्बर,... ऐसा दिगम्बर है नहीं। आहाहा! है!

श्रोता : गाथा अलौकिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा अलौकिक है। ऐ... निरंजन! तुम्हारे चिरंजीवी को भी इसमें प्रेम है। आहाहा! बापू! करने योग्य यह। समझे तो सही, पहले समझ तो करे। आहाहा!

जैसे सूई में सूत का डोरा पिरोवे तो वह नहीं खोती। खोती कहते हैं न? खोती नहीं। वैसे भगवान आत्मा का सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा पिरावे तो आगे जाकर चारित्र को पाकर मुक्ति पायेगा, परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं है, उसको तो कोई चारित्र नहीं आयेगा और चार गति में भटकेगा। आहाहा! सूत रहित सुई, धागे बिना की सुई तो खो जायेगी परन्तु धागा पिरोयेगा, पिरोया होगा तो चकली माला में ले जाये तो यह मेरी सुई है... वैसे सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा

यदि पिरोया होगा तो चार गति में नहीं भटकेगा। आहाहा! समझ में आया?

यह सम्यक्ज्ञान... मैं चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप हूँ, मुझमें राग और पुण्य नहीं, मेरी अल्पज्ञता में अल्पज्ञता भी मैं नहीं। आहाहा! ऐसा पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान करके, प्रतीति की और तदुपरान्त यहाँ तो आचरण भी लिया। आहाहा! चारित्र... तो यह चारित्रवन्त-दर्शन-ज्ञान और चारित्रवन्त ऐसा कहते हैं। **मैं ऐसा अनुभव करता हूँ....** सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप को जानकर, प्रतीति कर, आचरण किया। वह जीव ऐसा जानता है कि मैं ऐसा अनुभव करता हूँ। **मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ....** ओहोहो! गाथा अलौकिक है! मैं तो चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' श्रीमद् में आता है न? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम।' शुद्ध कहो या पारिणामिक स्वभाव कहो या ज्ञायक कहो या ध्रुव कहो। शुद्ध-बुद्ध ज्ञान का पिण्ड मैं तो ज्ञान का पिण्ड, ज्ञान अकेला ज्ञान के रस का पिण्ड मैं हूँ। शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन असंख्य प्रदेशी चैतन्यघन हूँ। स्वयं ज्योति, अपने से चैतन्य प्रकाशमय ज्योति हूँ। किसी कारण से नहीं। सुखधाम - मेरा आत्मा आनन्द का स्थान है, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। आहाहा! ऐसे आत्मा हुआ **मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि - मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ....** चैतन्य - जानन-देखनमात्र ज्योति, चैतन्यज्योति, चैतन्यमात्र ज्योति; राग आदि तो बिल्कुल नहीं। आहाहा! चैतन्यमात्र ज्योति जानन-देखन स्वभावमात्र ज्योति आहाहा! ऐसा जो आत्मा, वह मैं हूँ। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव अपने को ऐसा मानते हैं। जो धर्मी - सम्यग्दृष्टि हुआ वह (ऐसा मानता है)। जिन्हें भान नहीं, वह तो अनेक प्रकार है, राग और पुण्य की क्रिया से धर्म होगा और ऐसा मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ.... मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ। मैं रागरूप, शरीररूप, वाणीरूप, मैं कर्मरूप - ऐसा नहीं। आहाहा! मैं तो चैतन्यमात्र चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु... जैसे सूर्य के प्रकाश का पुंज सूर्य है, वह जड़ का प्रकाश है। यह चैतन्य प्रकाश के नूर का पूर का तेज मैं आत्मा हूँ। आहाहा! यह तो ऐसी बात, लोगों को फुर्सत कहाँ, भटकने के कारण निवृत्त नहीं होता, पूरे दिन पाप, और फिर कुछ थोड़ा सा पुण्य थोड़ा करे वहाँ वह... आहाहा! सुई का दान और क्या कहा? ऐरण की चोरी। ऐरण होती

है न सोने की-सोनी की। उसकी चोरी करे और सुई का दान। अब पूरे दिन पाप, पाप किया करे, उसमें कभी यात्रा, भक्ति, व्रत आदि पूजा का भाव शुभ हो, वह सुई का दान है। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो कहते हैं - धर्मी अपने को ऐसा जानता है कि **मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ....** ज्योतिरूप आत्मा; ज्योतिवाला ऐसा भी नहीं। चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा। आहाहा! ज्योतिस्वरूप आत्मा; ज्योतिवाला आत्मा, ऐसा नहीं (क्योंकि) वह तो भेद है। यह चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा। आहाहा! वह निकलता है न क्या, प्रकाश नहीं? बाहुबलीजी नहीं, बाहुबली में है? (श्रोता : सर्च लाईट) सर्च लाईट, दूर से ऐसे (प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश...) वैसे यह आत्मा चैतन्य ज्योति की सर्च लाईट है। आहाहा! बाहुबली मैं है न, बाहुबली में है। दो सर्च लाईट सामने और दो सर्च लाईट सामने (आमने-सामने)। वैसे भगवान आत्मा चैतन्यज्योति की सर्च लाईट अन्दर है, प्रकाश का पुंज-चैतन्य के प्रकाश का पुंज आत्मा है।

यह कैसे जँचे? बीड़ी पीना चले नहीं, और तम्बाकू बिना चले नहीं, अब इतने तो अपलक्षण! दो बीड़ी-सिगरेट ठीक से पीवे तब तो भाई को पाखाने में दस्त आवे, उतरे। पाखाने में दस्त उतरे। इतने तो अपलक्षण। अब उसे ऐसा (आत्मा) कहना, ऐसा आत्मा कैसे जँचे? आहाहा! यह तो जिसे समझ में आवे उसकी बात है। आहाहा! **मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;....** आहाहा! मेरे अनुभव में प्रत्यक्ष जानने में आता है - यह तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष जानने में आता है, परोक्ष नहीं। इस श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा, वह तो प्रत्यक्ष पूर्ण सर्वज्ञ नहीं, इस अपेक्षा से (कहा है), वरना यहाँ तो प्रत्यक्ष कहा है। समझ में आया? यह मेरे अनुभव में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। आहाहा! और 'शुद्धो', शुद्धो है न? अहं एक्को यहाँ तक का अर्थ हुआ है। शब्द है न? अहं एक्को है न मूल गाथा में? अब 'एक्को' का (स्पष्टीकरण)।

चिन्मात्र आकार के कारण.... मैं तो ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञाता की ज्योतिस्वरूप आत्मा के कारण। **समस्त क्रमरूप....** नरकगति, मनुष्यगति आदि क्रम से मिलती है, वह

नहीं। मनुष्यगति, तिर्यंचगति, देवगति, पर्याप्त-अपर्याप्त क्रम से होती है, वह नहीं। **तथा अक्रमरूप....** एक साथ योग, लेश्या, कषाय, एक साथ होते हैं, वे अक्रम। एक साथ होते हैं, वह भी मैं नहीं। आहाहा! इसमें भी कितने ही घोटाला करते हैं देखा? यह क्रम-अक्रम कहते हैं परन्तु कुछ क्रम-अक्रम क्या कहा है? यह तो क्रम अर्थात् एक के बाद एक गति होती है। उसको गति को क्रम कहते हैं और एक साथ योग, लेश्या, कषाय एक साथ हैं उन्हें अक्रम कहते हैं। तो **क्रमरूप तथा अक्रमरूप प्रवर्तमान....** वर्तमान-वर्तमान वर्तते नरकगति आदि और राग आदि **प्रवर्तमान व्यावहारिक भावों से भेदरूप नहीं होता....** ऐसे व्यवहारभाव से मैं भेद (रूप) नहीं हूँ। आहाहा! यह सूक्ष्म बात है। मेरी चीज तो ज्ञायकस्वरूप भगवान... धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि प्रथम धर्म की शुरुआतवाला अपने को ऐसा जानता है। मैं तो ज्ञायकमात्र ज्योतिस्वरूप इन क्रम से होनेवाली गति आदि मेरे में नहीं है! **भेदरूप नहीं होता।** इन व्यवहारिक से-क्रम से गति आदि में, अक्रम से योग, कषाय आदि भेदरूप नहीं होता। **इसलिए मैं एक हूँ;....** अब यहाँ एक आया। आहाहा! 'अहं एक्को' आहाहा! अब यहाँ एक आया। 'अहं एक्को' की व्याख्या हुई। एक अक्षर की व्याख्या। अब शुद्ध की व्याख्या लेंगे!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)